The International Journal of Advanced Research In Multidisciplinary Sciences
(IJARMS)
Volume 2 Issue 1, 2019

रविंद्र नाथ टैगोर के शैक्षणिक विचारः एक अध्ययन

डॉ विजय कुमार
एसोसिएट प्रोफेसर, बी एड विभाग,
हीरालाल रामनिवास स्नातकोत्तर महाविद्यालय, खलीलाबाद, संतकबीरनगर

धर्मनिष्ठ माता–पिता की सन्तान और उसका संसर्ग होने से रवीन्द्र नाथ टैगोर भी धार्मिक भावना से भरे थे। परन्तु वे बुद्धिवादी थे। अतः उन्होंने कहा कि धर्म के लिये उचित एक स्थान और एक उचित वातावरण आवश्यक है जो जीवन को अनुप्रामाणित कर दे और आत्मा को ऊँचा उठा दे। उनके विचार में धर्म असीम के प्रति अधिक उत्कृष्ठ इच्छा है, असीम की आनन्दमयी अनुभूति है। इसलिये हिन्दू तथा अन्य सभी धर्मों की कटु आलोचना की है। जहाँ वे तर्कहीनता पर आधारित अंधविश्वास क्रिया–कर्म, अथवा विभिन्न प्रकार के आडम्बरों पर बल देते हैं। उन्होंने धर्म शिक्षा लेख में संकेत किया है कि धर्म के लिये न तो मन्दिरों की न ब्राहमण और कर्म की जरूरत है। प्रकृति मानवीय भावना ही हमारे मंदिर है और स्वार्थ रहित अच्छे कार्य हमारी पूजा है, क्योंकि सच्चा धर्म तो अन्तस में होता है और वहीं बढ़ता है टैगोर ने अपने रिलीजन ऑफ मैन ने लिखा है कि सच्ची धार्मिकता तो मनुष्य को मनुष्य के रूप में सहर्श मानने के मूल्य में होती है। गुरूदेव रबीन्द्रनाथ टैगोर जी ने पाठ्यक्रम के सन्दर्भ में व्यवस्थित विचार नही दिये पर उनकी रचनाओं एवं कार्यो के आधार पर यह कहा जा सकता हैं कि वे पाठ्यक्रम को विस्तृत बनाने के पक्षधर थे ताकि जीवन के सभी पक्षों का विकास हो सकें। वें मानवीय एवं सांस्कृतिक विषयों को महत्वूपर्ण स्थान देतें हैं। विश्व भारती में इतिहास, भूगोल, विज्ञान, साहित्य, प्रकृति अध्ययन आदि की शिक्षा तो दी ही जाती हैं, साथ ही अभिनय क्षेत्रीय अध्ययन, भ्रमण, ड्राइंग, मौलिक रचना, संगीत, नृत्य आदि की भी शिक्षा दी जाती हैं।

रवीन्द्रनाथ टैगोर का बचपन उस समय के धनाढय घर की परंपरा के अनुसार ही प्रारम्भ हुआ। उनकी देखभाल सेवकों द्वारा अधिक की गई। बाद में उन्होने स्वयं उस समय को परिवार के 'सेवकों' के निरंकुश शासन के रूप में वर्णित किया। उनके ऊपर जो बंधन लगाए गए, उनमें उन्हे घर कैद–सा लगा। बच्चों को प्राकृतिक सोंदर्य का अवलोकन करने के आनंद लेने से रोकना उन्हें अपार मानसिक कष्ट देता रहा। वे घर के बंधनों से बाहर आना चाहते थे। उन्होने स्कूल जाने की उत्सुकता स्वयं व्यक्त की पर परिवार का दबाव नहीं था। मगर जब गए तो उन्होने वहां भी हर तरफ बंधन ही देखे, लगभग वैसे ही जैसे घर की चारदिवारी में मिले थे। वहां के ऐसे अनुभव के बाद वे स्कूल के बंधन से छूटने को व्याकूल हो गए। जेल की तरह दीवारें, निर्मम अनुशासन और सजा तथा अध्यापक उन्हें 'बेंत की प्रतिमूर्ति' ही दिखाई देते थे।

असहनीय परिस्थितियों में अपरिचित भाषा में दी जा रही शुष्क तथा नीरस शिक्षा से ही नियमों, सिद्धांतों, तथ्यों, संकल्पनाओं को रटने पर निर्भर थी। इसमें जो सिखाया जाता था उस पर विचार करने या उसे समझ के आत्मसात करने की कोई संभावना ही नहीं बनती थी।

'शिक्षार हेरफेर' लेख में टैगोर ने लिखा था कि सोचने की शक्ति और कल्पना शक्ति दो ऐसी अत्यंत महत्वपूर्ण मानसिक शक्तियाँ है, जिनसे मनुष्य की क्षमताएँ लगातार बढ़ती रहनी चाहिए। यह एक कार्यशील और सृजनात्मक जीवन के आवश्यक अंग है, उसमें नवाचार और नवोन्मेष लाने के कारक हैं। बचपन से ही विचार तथा कल्पना की शक्ति को प्रस्फुटित करने का प्रयास अनिवार्य रूप से होना चाहिए। दुर्भाग्य से स्कूल में रटाने पर इतना जोर दिया जाता रहा है कि की ये दोनों लगातार कुंद होते जाते है। जैसे ही इन पर ध्यान देना प्रारम्भ होगा, तो दो अन्य अत्यावयश्क तत्व स्वतः उभरेंगे–जिज्ञासा और सृजनात्मकता। यह तभी संभव है जब बच्चों पर अनावश्यक नियंत्रण नहीं थोपा जाएगा।

गुरुदेव हर अवसर पर किताबी शिक्षा के प्रति अपनी दूरी को अवश्य प्रकट करते थे। वे प्रकृति से सीधे सीखने की क्षमता को प्रोत्साहन देने के पक्षधर थे। अध्यापकों के प्रयास बच्चों को जीवन की वास्तविकता और अपने आसपास के पर्यावरण से परिचित कराने की दिशा में ही केन्द्रित होने चाहिए। हमारी शिक्षा कुछ ऐसी है जैसे पेड़ की जड़ों से सैकड़ों गज दूर वर्षा हो ओर उसमें से कुछ बूंदे ही बड़ी मुश्किल से जड़ों तक यानि हमें अपने जीवन को स्वारने के लिए मिल सकें। हमारे सामने यक्ष प्रश्न शिक्षा और जीवन के बीच समरसता–हारमनी–स्थापित करने का है।

कृपलानी की पुस्तक 'रवीन्द्रनाथ ठाकुर एक जीवनी' में 'उनका मानना था कि बालक का मस्तिष्क अपने परिवेश के प्रति असाधारण रूप से सजग होता है और वह उसे इंद्रिय अनुभव द्वारा ग्रहण करता है। अपने मस्तिष्क से सीखने के पूर्व वह इन अनुभवों को इंद्रियों से आत्मसात करना सीख चुका होता है। इसलिए उसे एक ऐसा वातावरण प्रदान किया जाना चाहिए, जो उसकी जिज्ञासा को उत्प्रेरित करें, ताकि उसे अपने चारों ओर की दुनिया सहज और आनंदपूर्ण लगे। उसे इस बात के लिए भी प्रोत्साहित किया जाना चाहिए कि वह अपना काम स्वयं करे और जहां तक संभव हो शिक्षक पर उसकी निर्भरता कम हो। इसलिए जहां तक हो सके उसे कला का शिक्षण प्रदान किया जाना चाहिए, ताकि बालक अपने वातावरण को समझ सके और उससे प्यार कर सके।

रवीन्द्रनाथ के अनुसार प्रकृति ही सर्वश्रेष्ठ शिक्षक है। वे शिक्षा को कला से प्रारम्भ करने की बात करते थे। गुरुदेव जोर दिया कि बालक अपने हर अगंदृप्रत्यंग के कार्य और उनकी संवेदना को समझ ले। इस सारे चिंतन और शैक्षिक दर्शन के विपरित शिक्षा के नाम पर जो तब हो रहा था और आज भी हो रहा है, उस पर गुरुदेव का कथन था, 'हमारे देश की शैक्षिक संस्थाएं मात्र ज्ञान का भिक्षापात्र है और ये हमारे राष्ट्रीय आत्मसम्मान का सर नीचा करती है और हम इस बात के लिए उत्साहित करती है कि हम उधार लिए पंखों का आडंबरपूर्ण प्रदर्शन कर सके। इस सबके परिणाम के संबंध में वे आगाह भी करते हैं, 'अगर सारी दुनियाँ आगे बढ़ते–बढ़ते अतिरंजित पश्चिम की तरह ही हो जाए तो फिर ऐसी फूहड़ नकल वाले आधुनिक युग की छद्मता अपने आप समाप्त हो जाएगी, वह अपनी ही विमूढ़ता के नीचे दम तोड़ देगी।

टैगोर पश्चिम के ज्ञान–विज्ञान के प्रशंसक थे, मगर भारत की विशेषता और विशेषज्ञता को नजरदाज करने को तैयार नहीं थे। गुरुदेव के अनुसार हमें नैतिक ज्ञान भंडार को किसी भी सूरत में भूलना नहीं चाहिए क्योंकि यह पश्चिम के उस ज्ञान से कहीं उच्च स्तर का तथा प्रभावशाली है, जिसमें केवल अनगिनत उत्पाद तथा भौतिकता लगातार संघर्षरत है। गुरुदेव ने स्पष्ट लिखा है कि हमें यह स्वीकार करना चाहिए कि आधुनिक ज्ञान मानवता को सदा के लिए यूरोप का दिया एक वरदान है। हमें उन्हें उपयोग में लाना चाहिए और पिछड़े बने रहने से मुक्ति पानी चाहिए, मगर उसे उसी स्वरूप में बिना विश्लेषण के स्वीकार नहीं किया जा सकता। शिक्षा का जो अनुपयुक्त और अव्यवहारिक स्वरूप भारत पर थोपा गया था, उससे उनका विरोध था। उससे बचने के लिए आवश्यक था कि भारत की संस्कृति के हर पक्ष को संबल देकर शिक्षा में उभारा जाए, न कि पश्चिम की संस्कृति के विरोध में राष्ट्रीय ऊर्जा को खपाया जाए।

गुरुदेव मानते थे की मनुष्य की वैचारिकता के बृहद और विस्तृत अध्ययन द्वारा भारतीय जीवन में विविधता में निहित सामंजस्य तथा तालमेल को समझा जा सकता है। गुरुदेव सदा ही खुलेपन, नैसर्गिक तथा आनंदपूर्ण वातावरण की ओर इंगित करते रहे, जिसे पाना बच्चों का नैसर्गिक अधिकार माना जाना चाहिए। गुरुदेव का सारा शैक्षिक दर्शन प्रकृति को सर्वश्रेष्ठ शिक्षक मानता रहा। उसे ही व्यवहारिक रूप में शांति निकेतन परिसर में सभी के समक्ष रखा गया। मनुष्य की नियति है कि वह प्रकृति की सदा बदलती रहती मनोदशाओं को जानने–समझने का प्रयास करे। अगर वह ऐसा पूर्ण मनोयोग से करेगा, तो उसका प्रकृति से मानसिक और संवेदनात्मक संबंध स्थापित हो जाएगा। चूंकि स्कूल–आधारित शिक्षा व्यवस्थाएं ऐसा नहीं कर पाई है, इसलिए मनुष्य और प्रकृति के बीच की संवेदनात्मक कड़ी कमजोर हो गई और मनुष्य प्रकृति को केवल संसाधनों के दोहन और संग्रहण में ही उलझ कर रह गया। परिणाम सामने है, जलवायु परिवर्तन, वायु–प्रदूषण, जल संकट और कितने ही अन्य। विज्ञान बढ़ा है, ज्ञान बढ़ा है लेकिन विवेक नहीं बढ़ा है। परिणाम स्वरूप मानवता नहीं बढ़ी है।

गुरुदेव मानते थे कि प्रकृति और ललित कलाओं से संपर्क का बालक की भावनाओं पर जो प्रभाव पड़ता है वह उसे मानवीय मूल्यों को आत्मसात करने में सहायक होगा। वह उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व विकास के लिए भी आवश्यक है। इनमें जो भी रुचि लेगा उसकी जिज्ञासा और प्रखर होगी तथा इससे उसकी सृजनात्मक को भी संबल मिलेगा। इसके लिए ऐसी शिक्षा व्यवस्था को साकार रूप देना होगा, जिसकी जड़ें देश की मिट्टी, यानि संस्कृति, विरासत, इतिहास और ज्ञानार्जन परंपरा में गहराई तक गई हुई होनी चाहिए। आज के नीति निर्धारकों के समक्ष यही चुनौती है।

अपने धर्मबोध नामक लेख में टैगोर ने धर्म शिक्षा के विषय में विचार प्रकट किये है– धर्म शिक्षा के दो पक्ष है एक चरित्र आचरण के परिष्कार जो सत्यानुभूति के लिये अत्यन्त आवश्यक है। दूसरा अपनी ज्ञानेन्द्रियों का विकास एवं संस्कार जिससे अनुभवों से सुखानुभूति हो। इन दोनों को मिलाकर ही धर्म शिक्षा पूरी होती है। धर्म शिक्षा के लिये टैगोर का विचार है कि धर्म शिक्षा को सर्वाधिक रूप देना कठिन है। इस प्रकार की सर्वाधिक शिक्षा बहुत ही वैयक्तिक होती है। उनके सामने केवल सामान्य एवं अविधिक ढंग से धर्म शिक्षा थी। इसलिये शान्ति निकेतन से किसी प्रकार की साम्प्रदायिक शिक्षा अथवा मत विशेष कर्मकाण्ड नहीं होता और एक विश्वधर्म की भावना होती है। विश्व भारती में प्रातः कालीन प्रार्थना होती है, सभी धर्मों के पैगम्बरों के

जन्मदिवस मनाएँ जाते है। प्राकृतिक कला में जो सौन्दर्य और आनन्द मिलता है, उससे आध्यात्मिक बोध के लिये प्रेरणा दी जाती है। आश्रम में रहकर ज्ञान एवं संस्कृति को प्राप्त करने के लिये जो गम्भीर प्रयत्न किये जाते है, उनसे कर्तव्यों की पूर्ति होती है, यह धर्म शिक्षा के अन्तर्गत है। गरीबों की सेवा अशिक्षितों को पढ़ाना गिरे हये एवं पिछड़े लोगों को ऊपर उठाना और आगे बढ़ाना विभिन्न देश के रहने वालों मानवीय हार्दिक सम्पर्क में मेल, सहयोग से कार्य करना, देश के प्रति अच्छी धारणा, शान्ति निस्तब्धता, उच्चादर्श से पूर्ण वातावरण तथा महात्माओं की भव्यात्मा के प्रभाव की अनुभूति आदि सभी भी धर्म शिक्षा के साधन है। अतः धर्म सम्पूर्ण जीवन की साधना है, मानवता की साधना है, जिसकी शिक्षा व्यवहारिक एवं अविधिक ढंग से दी जा सकती है।

शैक्षिक विचार गुरूदेव टैगोर के विचार से देश के समस्त अभावों का मुख्य कारण शिक्षा का अभाव है। इसलिये उन्हें जनसाधारण की शिक्षा पर बल देना चाहिये। उनकी दृष्टि से जन शिक्षा के प्रचार एवं प्रसार के लिये दो कार्य करने चाहिये। एक तो बच्चों के लिये अनिवार्य प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा की निःशुल्क व्यवस्था और दूसरा प्रशिक्षित पौदों को पढ़ाने लिखने का सामान्य ज्ञान कराना इस सन्दर्भ में उन्होंने बात को बड़ा महत्व दिया कि शिक्षा समाज के जीवन से जुड़ी होनी चाहिये। और चूँकि देश की 70 प्रतिशत जनसंख्या देश में निवास करती है। इसलिये इन सबसे उनके जीवन की समस्याओं को विशेष ध्यान दिया जाए। प्रौढ़ शिक्षा के लिये उन्होंने रात्रि पाठशालाओं की आवश्कता पर बल दिया और यह का कि प्राथमिक पाठशालाओं के अध्यापक और माध्यममि पाठशालाओं के विद्यार्थी इनमें शिक्षण कार्य करें।

समाज में स्त्रियों की अच्छी दशा न देखकर रवीन्द्र नाथ टैगोर को लगा कि उन्हें भी उसी प्रकार ऊँचा उठाया जाये जिस प्रकार विदेशों में हुआ जहाँ शिक्षा की व्यवस्था अलग न हो सकें, वहाँ सह शिक्षा भी दी जाएँ स्त्रियों को टैगोर पिछड़ा हुआ नहीं देखना चाहते थे। वह पुरूषों की भाँति उन्हें उन्नत बनाना चाहते थे अपनी स्त्री शिक्षा में उन्होंने इन पर विस्तार में विचार प्रकट किया है, उन्होंने लिखा है कि जो कुछ जानने योग्य है, वही ज्ञान है। वह स्त्री व पुरूष दोनों के द्वारा समान रूप से जाना जाय। केवल व्यावहारिक उपयोगिकता से विचार से नहीं बल्कि जानने के लिये–1 जानने की इच्छा तो मानव प्रकृति का नियम हैं इस प्रकार सामान रूप से स्त्री को शिक्षा देने से स्त्रीत्व नष्ट नहीं होती है। यह टैगोर का विचार था क्योंकि मानव प्रकृति इतनी आशक्त एवं परिवर्तनीय नहीं है।

इसलियें उन्होंने स्त्री की शिक्षा और पुरूष की शिक्षा में कोई भेद नहीं रखा। स्त्री को उन्होंने केवल वैयक्तिक महत्व की दृष्टि से नहीं देखा बल्कि सामाजिक दृष्टि से देखा है उन्होंने अनुभव किया कि स्त्रियों को पुरूष की आक्रमणकारी व्यायामशीलता द्वारा सजाएँ गये है कृत्रिम क्षेत्र में पीछे नहीं फेका जा सकता। स्त्रियों को छत एवं अपंग संसार में आना चाहिये। टैगोर ने लिखा है कि स्त्रियों पुरूषों से मेल करके एक नये संसार का निर्माण करें, ऐसा इतिहास में हुआ है। इस प्रकार से स्त्री पुरूष के सहयोग से जीवन की प्रत्येक विभाग में समानता के साथ मानव समाज का नव निर्माण होगा। इससे स्पष्ट है कि स्त्री शिक्षा पुरूष से हो और उसका लक्ष्य समाज का नव निर्माण हो। इसी विचार को टैगोर ने विश्व भारती में साकार रूप प्रदान किया हैं। शान्ति निकेतन में स्त्री शिक्षा विभाग में शिक्षण 1908 में आरम्भ हुआ लेकिन बाधाओं के उपस्थित होने से उसे कुछ समय के लिये बन्द कर दिया गया। पुनः 1922 में नारी भवन के नाम से आरम्भ

किया गया, बाद में इसे नारी विभाग कहा गया। यहाँ पर बालिकाओं और स्त्रियों को पुरूषों के समान और साथ ही शास्त्रीय विषयों की शिक्षा मिलती है। तथा गृह विज्ञान, पाक कला, सिलाई–कढ़ाई कला कौशल के लिये भी विशेष प्रबन्ध है। जो अध्ययन स्त्रियों द्वारा होता है, उसका मानदण्ड भी ऊँचा है। इसका प्रभाव शास्त्रीय एवं सांस्कृतिक समुन्नति में प्रकट होता है, जिसके लिये वहाँ उसी गोष्ठिया, समितियाँ और संगठन है।

खेल–कूद, व्यायाम, आत्मरक्षा की शिक्षा, समाज सेवा इत्यादि कार्यों की उपयुक्त सुविधाएँ है। इस प्रकार टैगोर ने स्त्री वर्ग के शरीरिक बौद्धिक व्यावसायिक सांस्कृतिक और सामाजिक उन्नति एवं शिक्षा के लिये प्रयत्न किया और जोर दिया, जिससे व्यक्तित्व की पूर्ण अभिव्यक्ति हो सके और उनका सुन्दर जीवन और सफल बन सकें। टैगोर की साहित्यिक रचनाओं से ज्ञात होता है कि पाश्चात्य । संस्कृति से प्रभावित होते हुये भी वे अपने राष्ट्र के प्रति गहरी भावना रखते थे, और सक्रिय रूप से राष्ट्रीय कार्यों में भाग लेते थे। प्राचीन भारतीय संस्कृति की परम्पराओं से प्रभावित होकर टैगोर ने राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली पर अत्यधिक जोर दिया, क्योंकि टैगोर की राष्ट्रीय भावना उनके कवि हृदय में प्रसूत हुई थी। वास्तव में टैगोर की राष्ट्रीय शिक्षा, अन्तराष्ट्रीय शिक्षा के प्रतिकूल न थी, बल्कि उसमें अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा की छाप परिलक्षित होती है। उनका विचार था कि भारत के प्रत्येक बालक एवं नागरिक में राष्ट्रीय शिक्षा में राष्ट्रीय भावना का विकास करना चाहिये।

विश्व भारती में प्राच्य संस्कृतियों के अध्ययन पर विषेश जोर दिया गया। विभिन्न भाषाओं की शिक्षा की व्यवस्था की गयी थी। रवीन्द्रनाथ टैगोर जी शिक्षा को पुस्तक केन्द्रित बनाने के विरोधी थे। वे अनुभव केन्द्रित एवं क्रिया प्रधान शिक्षा पर बल देते थे। छोटे बच्चों पर पाठ्य पुस्तकों के बोझ को वे डालना नही चाहते थे। उनके अनुसार प्रकृति से बच्चा जीवन का सही शिक्षा प्राप्त कर सकता हैं उच्च कक्षाओं में पाठ्य पुस्तकों का प्रयोग किया जा सकता हैं। विश्व भारती की शिक्षा प्रणाली में पाठ्यक्रम विषय केन्द्रित नहीं हैं। विभिन्न प्रकार की क्रियाएँ वहाँ देखने को मिलेगी। ड्राइंग, प्रयोगशाला कार्य, प्रातःकालीन प्रार्थना सरस्वती यात्राएँ, छात्रों का स्वशासन, खेलकूद, समाज सेवा, आदि क्रियाएँ पाठ्यक्रम के अंग की भाँति ही हैं।

इसलिए विश्व भारती के पाठ्यक्रम को अनुभव केन्द्रित माना जाता हैं। गुरूदेव जी का पाठ्यक्रम विस्तृत दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है, जिसके द्वारा शरीर मन तथा हृदय में सौन्दर्यानुभूति की शक्ति विकसित होती हैं। वे वर्तमान पाठ्यक्रम से संतुष्ट नही थें। क्योंकि वह परीक्षा लक्ष्य करके बनाया जाता हैं। टैगोर ने पाठ्यक्रम निर्माण में प्रकृति शिक्षा तथा मानव संतुलन पर बल दिया हैं बचपन के प्रथम सात वर्ष प्रकृति की गोद में बिताना चाहिए ताकि प्रकृति अपने अनुरूप बालक को शिक्षित कर सकें। यद्यपि कि वे महान रचयिता और पुस्तक प्रेमी थे फिर भी उन्होने पुस्तकीय पाठ्यक्रम को महत्व नहीं दिया। उनके अनुसार पाठ्यक्रम जीवन की आवश्यकताओं से संबंधित होना चाहिए, वे प्रकृतिवादी होते हुए भी व्यक्ति को समाज से जोड़ना चाहते थे। गुरूदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर जी का दृष्टिकोण पाठ्यक्रम की दृष्टि से बड़ा व्यवहारिक था। उनके अनुसार पाठ्यक्रम को एक सीमित क्षेत्रों में बाधना कठिन हैं। उनका मत था कि पाठ्यक्रम में राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय महत्व के विषयों का समावेश हो जिससे प्रत्येक देश दूसरे देश की संस्कृति तथा सभ्यता को पहचान सकें तथा शविश्व बन्धुत्वश के गुण विकसित हो सकें।

विश्व भारतीय की स्थापना इन्ही भावनाओं से प्रेरित होकर हुई जहाँ भाषा एवं साहित्य, इतिहास एवं भूगोल, कला एवं संस्कृत के अतिरिक्त वे क्रियाएँ भी सम्मिलित थी जो विदेशियों से सम्पर्क तथा सहानुभूति की वृद्धि में सहायक हो सकें। गुरूदेव के अनुसार बालक को अपने देश की आवश्यकताओं एवं समस्याओं के विषय में भी जानना आवश्यक हैं। बालक को भौगोलिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक विषयों की जानकारी होनी चाहिए। गुरूदेव रबीन्द्रनाथ टैगोर जी ने इस संबंध में स्पष्ट अभिव्यक्ति की थीं कि ज्ञान किसी देश के व्यक्तियों के लिए ही नही अपितु सम्पूर्ण मानव जाति के लिए है यही कारण हैं कि विश्व भारती विश्वविद्यालय में देश–विदेश की भाषाओं, संस्कृतियों, ज्ञान, विज्ञान और तकनीकी शिक्षा की व्यवस्था हैं। विदेशी छात्रों के लिए विशेष पाठ्यक्रम के रूप मे भारतीय संगीत की भी कक्षायें चलायी जाती थी। एक बात यहाँ की पाठ्यचर्चा में विशेष हैं ओर वह यह हैं कि यह आज भी कला, संस्कृति, धर्म और ग्रामोत्थान केन्द्रित हैं।

lanHk

1. रमन बिहारी लाल, शिक्षा के दार्शनिक एवं समाज शास्त्रीय आधार रस्तोगी पब्लिकेसन्स, मेरठ–2014, पृष्ठ 271
2. डॉ० रामशकल पाण्डेय, शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्री पृष्ठभूमि विनोद पुस्त्क मंदिर, आगरा 2013, पृष्ठ सं. 235
3. डॉ सत्य पाल रूहेला रू शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार पृष्ठ 234 अग्रपाल पब्लिकेशन आगरा–2013
4. डॉ. ओ.पी. सिंह – शिक्षा दर्शन एवं शिक्षा शास्त्री पृष्ठ 196 शारदा पुस्तक भवन इलाहाबाद–2014
5. गुरूदेव रबीन्द्रनाथ टैगोर, शिक्षा पृष्ठ 236
6. प्रो. यू.एन. तिवारी रू प्रमुख शिक्षा शास्त्री पृष्ठ 62 नितिन प्रिन्टर्स इलाहाबाद
7. प्रो. सत्य पाल रूहेलाः शिक्षा के दार्शनिक एवं समाज आधार पृष्ठ 236 अग्रवाल पब्लिकेशन आगरा।
8. डॉ. ओ.पी. सिंह – शिक्षा दर्शन एवं शिक्षा शास्त्री पृष्ठ 196 शारदा पुस्तक भवन इलाहाबाद। 2013
9. गुरूदेव रवीन्द्र नाथ टैगोर, शिक्षा पृष्ठ 311,
10. प्रो. सत्य पाल रूहेल,ा शिक्षा के दार्शनिक एवं समाज शास्त्रीय आधार पृष्ठ 235 अग्रवाल पब्लिकेशन आगरा–2013
11. रमन बिहारी लाल, शिक्षा के दार्शनिक व समाजशास्त्रीय आधार पृष्ठ 273 रस्तोगी पब्लिकेशन मेरठ–2014